कर्ण दुर्योधन शकुनि पांडवों से जलते थे और उन्हें राज्य से निकाल देना चाहते थे

तांस्तथा सत्त्ववीर्यौजः सम्पन्नान् पौरसम्मतान् ।
नामृष्यन् कुरवो दृष्ट्वा पाण्डवाञ्छ्रीयशोभृतः ।। ७ ।।

सत्त्व (धैर्य और उत्साह), वीर्य (पराक्रम) तथा ओज (देहबल)-से सम्पन्न होनेके कारण पाण्डवलोग पुरवासियोंके प्रेम और सम्मानके पात्र थे। उनके धन, सम्पत्ति और यशकी वृद्धि होने लगी। यह सब देखकर कौरव उनके उत्कर्षको सहन न कर सके ।। ७ ।।

ततो दुर्योधनः क्रूरः कर्णश्च सहसौबलः ।
तेषां निग्रहनिर्वासान् विविधांस्ते समारभन् ।। ८ ।।

तब क्रूर दुर्योधन, कर्ण और शकुनि तीनोंने मिलकर पाण्डवोंको वशमें करने या देशसे निकाल देनेके लिये नाना प्रकारके यत्न आरम्भ किये ।। ८ ।।

कर्ण दुर्योधन शकुनि पांडवों से जलते थे और उन्हें राज्य से निकाल देना चाहते थे

तांस्तथा सत्त्ववीर्योजः सम्पन्नान् पौरसम्मतान् ।
नामृष्यन् कुरवो दृष्ट्वा पाण्डवाञ्छ्रीयशोभृतः ।। ७ ।।

सत्त्व (धैर्य और उत्साह), वीर्य (पराक्रम) तथा ओज (देहबल)-से सम्पन्न होनेके कारण पाण्डवलोग पुरवासियोंके प्रेम और सम्मानके पात्र थे। उनके धन, सम्पत्ति और यशकी वृद्धि होने लगी। यह सब देखकर कौरव उनके उत्कर्षको सहन न कर सके ।। ७ ।।

ततो दुर्योधनः क्रूरः कर्णश्च सहसौबलः ।
तेषां निग्रहनिर्वासान् विविधांस्ते समारभन् ।। ८ ।।

तब क्रूर दुर्योधन, कर्ण और शकुनि तीनोंने मिलकर पाण्डवोंको वशमें करने या देशसे निकाल देनेके लिये नाना प्रकारके यत्न आरम्भ किये ।। ८ ।।

Vedvyas ke according Karn

दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः
स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः ।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे
मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी ।। ११० ।।

दुर्योधन क्रोधमय विशाल वृक्षके समान है। कर्ण स्कन्ध, शकुनि शाखा और दुःशासन समृद्ध फल-पुष्प है। अज्ञानी राजा धृतराष्ट्र ही इसके मूल हैं* ।। ११० ।।

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः

कर्ण , दुर्योधन , शकुनि ये लोग कई उपायों से पांडवों को मार डालना चाहते थे

गया ।। २८ ।।

एवं दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः ।
अनेकैरभ्युपायैस्ताञ्जिघांसन्ति स्म पाण्डवान् ।। ४० ।।

इस प्रकार दुर्योधन, कर्ण तथा सुबलपुत्र शकुनि अनेक उपायोंद्वारा पाण्डवोंको मार डालना चाहते थे ।। ४० ।।

पाण्डवाश्चापि तत् सर्वं प्रत्यजानन्नमर्षिताः ।
उद्भावनमकुर्वन्तो विदुरस्य मते स्थिताः ।। ४१ ।।

पाण्डव भी यह सब जान लेते और क्रोधमें भर जाते थे, तो भी विदुरकी रायके अनुसार चलनेके कारण अपने अमर्षको प्रकट नहीं करते थे ।। ४१ ।।

कुमारान् क्रीडमानांस्तान् दृष्ट्वा राजातिदुर्मदान् ।

Vidur ke according Ch 204 GP

दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ।
अधर्मयुक्ता दुष्प्रज्ञा बाला मैषां वचः कृथाः ॥ २९ ॥

दुर्योधन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि—ये अधर्मपरायण, खोटी बुद्धिवाले और मूर्ख हैं; अतः इनका कहना न मानिये ॥ २९ ॥

उक्तमेतत् पुरा राजन् मया गुणवतस्तव ।

कर्ण Dhritrastr धुर्योधन दुःशासन शकुनि ही खुश थे बाकी सब दुखी थे जब द्रौपदी को दाव पर लगाया गया

Dyutparv

धृतराष्ट्रस्तु तं हृष्टः पर्यपृच्छत् पुनः पुनः ।
किं जितं किं जितमिति ह्याकारं नाभ्यरक्षत ।। ४३ ।।

धृतराष्ट्र मन-ही-मन प्रसन्न हो उनसे बार-बार पूछ रहे थे, 'क्या हमारे पक्षकी जीत हो रही है?' वे अपनी प्रसन्नताकी आकृतिको न छिपा सके ।। ४३ ।।

जहर्ष कर्णोऽतिभृशं सह दुःशासनादिभिः ।
इतरेषां तु सभ्यानां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ।। ४४ ।।

दुःशासन आदिके साथ कर्णको तो बड़ा हर्ष हुआ; परंतु अन्य सभासदोंकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे ।। ४४ ।।

सौबलस्त्वभिधायैवं जितकाशी मदोत्कटः ।
जितमित्येव तानक्षान् पुनरेवान्वपद्यत ।। ४५ ।।

सुबलपुत्र शकुनिने मैंने यह भी जीत लिया, ऐसा कहकर पासोंको पुनः उठा लिया। उस समय वह विजयोल्लाससे सुशोभित और मदोन्मत्त हो रहा था ।। ४५ ।।

कर्ण बड़ा खुश था जब दुशासन द्रौपदी को लेकर आया सभा मे

Dyutparv

दुःशासनश्चापि समीक्ष्य कृष्णा-
मवेक्षमाणां कृपणान् पतींस्तान् ।
आधूय वेगेन विसंज्ञकल्पा-
मुवाच दासीति हसन् सशब्दम् ॥ ४४ ॥

द्रौपदीको अपने दीन पतियोंकी ओर देखती देख दुःशासन उसे बड़े वेगसे झकझोरकर जोर-जोरसे हँसते हुए 'दासी' कहकर पुकारने लगा। उस समय द्रौपदी मूर्च्छित-सी हो रही थी ॥ ४४ ॥

कर्णस्तु तद्वाक्यमतीव हृष्टः
सम्पूजयामास हसन् सशब्दम् ।
गान्धारराजः सुबलस्य पुत्र-
स्तथैव दुःशासनमभ्यनन्दत् ॥ ४५ ॥

कर्णको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने खिलखिलाकर हँसते हुए दुःशासनके उस कथनकी बड़ी सराहना की। सुबलपुत्र गान्धारराज शकुनिने भी दुःशासनका अभिनन्दन किया ॥ ४५ ॥

कर्ण दुःशासन से कहता है की वो द्रौपदी (दासी) को घर लेजाये

Dyutparv

वैशम्पायन उवाच

विदुरस्य वचः श्रुत्वा नोचुः किंचन पार्थिवाः ।
कर्णो दुःशासनं त्वाह कृष्णां दासीं गृहान् नय ।। ८९ ।।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! विदुरकी यह बात सुनकर भी सब राजालोग कुछ न बोले। उस समय कर्णने दुःशासनसे कहा—'इस दासी द्रौपदीको अपने घर ले जाओ' ।। ८९ ।।

तां वेपमानां सव्रीडां प्रलपन्तीं स्म पाण्डवान् ।
दुःशासनः सभामध्ये विचकर्ष तपस्विनीम् ।। ९० ।।

द्रौपदी लज्जामें डूबी हुई थर-थर काँपती और पाण्डवोंको पुकारती थी। उस दशामें दुःशासनने उस भरी सभाके बीच उस बेचारी दुःखिया तपस्विनीको घसीटना आरम्भ

पांडवो को जलाने का आईडिया भी कर्ण और शकुनि ने मिल कर के दिया था - घोसयत्र पर्व 237

श्रूयते हि महाराज सरो द्वैतवनं प्रति ।
वसन्तः पाण्डवाः सार्धं ब्राह्मणैर्वनवासिभिः ।। १३ ।।

'महाराज! सुननेमें आया है कि पाण्डवलोग द्वैतवनमें सरोवरके तटपर वनवासी ब्राह्मणोंके साथ रहते हैं ।। १३ ।।

स प्रयाहि महाराज श्रिया परमया युतः ।
तापयन् पाण्डुपुत्रांस्त्वं रश्मिवानिव तेजसा ।। १४ ।।

'महाराज! तुम उत्कृष्ट राजलक्ष्मीसे सुशोभित होकर वहाँ चलो और जैसे सूर्य अपने तेजसे जगत्को संतप्त करते हैं, उसी प्रकार पाण्डुपुत्रोंको संताप दो ।। १४ ।।

स्थितो राज्ये च्युतान् राज्याच्छ्रिया हीनाञ्छ्रिया वृतः ।
असमृद्धान् समृद्धार्थः पश्य पाण्डुसुतान् नृप ।। १५ ।।

'इस समय तुम राजाके पदपर प्रतिष्ठित हो और पाण्डव राज्यसे भ्रष्ट हो गये हैं। तुम श्रीसम्पन्न हो और वे श्रीहीन हैं। तुम समृद्धिशाली हो और वे निर्धन हो गये हैं। नरेश्वर! तुम इसी दशामें चलकर पाण्डवोंको देखो ।। १५ ।।

कर्ण अर्जुन से बचपन से ही ईर्ष्या करता था और वो द्रोणाचार्य का शिष्य भी था

Shanti Parv CHapter 2

नारद उवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।
न कर्णार्जुनयोः किंचिदविषह्यं भवेद् रणे ।। २ ।।

नारदजीने कहा—महाबाहु भरतनन्दन! तुम जैसा कह रहे हो, ठीक ऐसी ही बात है। वास्तवमें कर्ण और अर्जुनके लिये युद्धमें कुछ भी असाध्य नहीं हो सकता था ।। २ ।।

गुह्यमेतत् तु देवानां कथयिष्यामि तेऽनघ ।
तन्निबोध महाबाहो यथा वृत्तमिदं पुरा ।। ३ ।।

अनघ! यह देवताओंकी गुप्त बात है जिसको मैं तुम्हें बता रहा हूँ। महाबाहो! पूर्वकालके इस यथावत् वृत्तान्तको तुम ध्यान देकर सुनो ।। ३ ।।

क्षत्रं स्वर्गं कथं गच्छेच्छस्त्रपूतमिति प्रभो ।
संघर्षजननस्तस्मात् कन्यागर्भो विनिर्मितः ।। ४ ।।

प्रभो! एक समय देवताओंने यह विचार किया कि कौन-सा ऐसा उपाय हो, जिससे भूमण्डलका सारा क्षत्रिय-समुदाय शस्त्रोंके आघातसे पवित्र हो स्वर्गलोकमें पहुँच जाय। यह सोचकर उन्होंने सूर्यद्वारा कुमारी कुन्तीके गर्भसे एक तेजस्वी बालक उत्पन्न कराया, जो संघर्षका जनक हुआ ।। ४ ।।

वही तेजस्वी बालक सूतपुत्रके रूपमें प्रसिद्ध हुआ। उसने अंगिरागोत्रीय ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्यसे धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की ।। ५ ।।

स बलं भीमसेनस्य फाल्गुनस्य च लाघवम् ।
बुद्धिं च तव राजेन्द्र यमयोर्विनयं तदा ।। ६ ।।
सख्यं च वासुदेवेन बाल्ये गाण्डीवधन्वनः ।
प्रजानामनुरागं च चिन्तयानो व्यदह्यत ।। ७ ।।

राजेन्द्र! वह भीमसेनका बल, अर्जुनकी फुर्ती, आपकी बुद्धि, नकुल और सहदेवकी विनय, गाण्डीवधारी अर्जुनकी श्रीकृष्णके साथ बचपनमें ही मित्रता तथा पाण्डवोंपर प्रजाका अनुराग देखकर चिन्तामग्न हो जलता रहता था ।। ६-७ ।।

स सख्यमकरोद् बाल्ये राज्ञा दुर्योधनेन च ।
युष्माभिर्नित्यसंद्विष्टो दैवाच्चापि स्वभावतः ।। ८ ।।

इसीलिये उसने बाल्यावस्थामें ही राजा दुर्योधनके साथ मित्रता स्थापित कर ली और दैवकी प्रेरणासे तथा स्वभाववश भी वह आपलोगोंके साथ सदा द्वेष रखने लगा ।।

streamyard.com is sharing your screen. Stop sharing Hide

वीर्याधिकमथालक्ष्य धनुर्वेदे धनंजयम् ।
द्रोणं रहस्युपागम्य कर्णो वचनमब्रवीत् ।। ९ ।।

एक दिन अर्जुनको धनुर्वेदमें अधिक शक्तिशाली देख कर्णने एकान्तमें द्रोणाचार्यके पास जाकर कहा ।। ९ ।।

ब्रह्मास्त्रं वेत्तुमिच्छामि सरहस्यनिवर्तनम् ।
अर्जुनेन समं चाहं युध्येयमिति मे मतिः ।। १० ।।
समः शिष्येषु वः स्नेहः पुत्रे चैव तथा ध्रुवम् ।
त्वत्प्रसादान्न मां ब्रूयुकृतास्त्रं विचक्षणाः ।। ११ ।।

'गुरुदेव! मैं ब्रह्मास्त्रको उसके छोड़ने और लौटानेके रहस्यसहित जानना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि मैं अर्जुनके साथ युद्ध करूँ। निश्चय ही आपका सभी शिष्यों और पुत्रपर बराबर स्नेह है। आपकी कृपासे विद्वान् पुरुष यह न कहें कि यह सभी अस्त्रोंका ज्ञाता नहीं है' ।। १०-११ ।।

द्रोणाचार्य कर्णकी दुष्टताको समझकर उससे बोले— ।। १२ ।।

ब्रह्मास्त्रं ब्राह्मणो विद्याद् यथावच्चरितव्रतः ।
क्षत्रियो वा तपस्वी यो नान्यो विद्यात् कथंचन ।। १३ ।।

'वत्स! ब्रह्मास्त्रको ठीक-ठीक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाला ब्राह्मण जान सकता है अथवा तपस्वी क्षत्रिय। दूसरा कोई किसी तरह इसे नहीं सीख सकता' ।। १३ ।।

इत्युक्तोऽङ्गिरसां श्रेष्ठमामन्त्र्य प्रतिपूज्य च ।
जगाम सहसा रामं महेन्द्रं पर्वतं प्रति ।। १४ ।।

उनके ऐसा कहने पर अंगिरागोत्रीय ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यकी आज्ञा ले उनका यथोचित सम्मान करके कर्ण सहसा महेन्द्र पर्वतपर परशुरामजीके पास चला गया ।। १४ ।।

स तु राममुपागम्य शिरसाभिप्रणम्य च ।
ब्राह्मणो भार्गवोऽस्मीति गौरवेणाभ्यगच्छत ।। १५ ।।

परशुरामजीके पास जाकर उसने मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और 'मैं भृगुवंशी ब्राह्मण हूँ' ऐसा कहकर उसने गुरुभावसे उनकी शरण ली ।। १५ ।।

अर्जुन का पता बताने वाले को कर्ण द्वारा पुरुस्कार

Karn Parv Chapter 38

राजोचित भोगोंसे परिपूर्ण होंगे ।। १६-१७ ।।

दासीनां निष्ककण्ठीनां मागधीनां शतं तथा ।
प्रत्यग्रवयसां दद्यां यो मे ब्रूयाद् धनंजयम् ।। १८ ।।

'जो मुझे अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं सोनेके कण्ठहारोंसे विभूषित मगधदेशकी सौ नवयुवती दासियाँ दूँगा ।। १८ ।।

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ।
अन्यं तस्मै वरं दद्यां यमसौ कामयेत् स्वयम् ।। १९ ।।

खच्चरियोंसे जुता हुआ एक श्वेत रथ भी भेंट करूँगा; जिसमें काले केशवाली युवतियाँ बैठी होंगी ।। ५½ ।।

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ।। ६ ।।
अन्यं वास्मै पुनर्दद्यां सौवर्णं हस्तिषड्गवम् ।
तथाप्यस्मै पुनर्दद्यां स्त्रीणां शतमलंकृतम् ।। ७ ।।
श्यामानां निष्ककण्ठीनां गीतवाद्यविपश्चिनाम् ।

'यदि अर्जुनका पता बतानेवाला पुरुष उस धनको पूरा न समझे तो उसे दूसरा सोनेका बना हुआ रथ प्रदान करूँगा जिसमें हाथीके समान हृष्ट-पुष्ट छः बैल जुते होंगे। साथ ही उसे वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सौ ऐसी स्त्रियाँ दूँगा, जो श्यामा (सोलह वर्षकी अवस्थावाली), सुवर्णमय कण्ठहारसे अलंकृत तथा गाने-बजानेकी कलामें विदुषी होंगी ।। ६-७½ ।।

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ।। ८ ।।

पुत्रदारान् विहारांश्च यदन्यद् वित्तमस्ति मे ।
तच्च तस्मै पुनर्दद्यां यद् यच्च मनसेच्छति ।। २० ।।

'स्त्री, पुत्र, विहारस्थान तथा दूसरा भी जो कुछ धन-वैभव मेरे पास है, उसमेंसे जिस-जिस वस्तुको वह अपने मनसे चाहेगा, वह सब कुछ मैं उसे दे डालूँगा ।। २० ।।

हत्वा च सहितौ कृष्णौ तयोर्वित्तानि सर्वशः ।
तस्मै दद्यामहं यो मे प्रब्रूयात् केशवार्जुनौ ।। २१ ।।

'जो मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं उन दोनोंको मारकर उनका सारा धन-वैभव दे दूँगा' ।। २१ ।।

एता वाचः सुबहुशः कर्ण उच्चारयन् युधि ।
दध्मौ सागरसम्भूतं सुस्वरं शङ्खमुत्तमम् ।। २२ ।।

इन सब बातोंको बारंबार कहते हुए कर्णने युद्धस्थलमें समुद्रसे उत्पन्न हुए अपने उत्तम शंखको उच्च स्वरसे बजाया ।। २२ ।।

[redacted]

जब अस्वथामा ने कर्ण को मारने के लिए तलवार उठा ली

सजय उवाच

तथा परुषितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मातुलम् ।
खड्गमुद्यम्य वेगेन द्रौणिरभ्यपतद् द्रुतम् ।। १ ।।

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार अपने मामाके प्रति सूतपुत्र कर्णको कटु वचन सुनाते देख अश्वत्थामा बड़े वेगसे तलवार उठाकर तुरंत कर्णपर टूट पड़ा ।। १ ।।

ततः परमसंक्रुद्धः सिंहो मत्तमिव द्विपम् ।
प्रेक्षतः कुरुराजस्य द्रौणिः कर्णं समभ्ययात् ।। २ ।।

जैसे सिंह मतवाले हाथीपर झपटता है, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोणकुमार अश्वत्थामाने कुरुराज दुर्योधनके देखते-देखते कर्णपर आक्रमण किया ।।

अश्वत्थामोवाच

यदर्जुनगुणांस्तथ्यान् कीर्तयानं नराधम ।
शूरं द्वेषात् सुदुर्बुद्धे त्वं भर्त्सयसि मातुलम् ।। ३ ।।
विकत्थमानः शौर्येण सर्वलोकधनुर्धरम् ।
दर्पोत्सेधगृहीतोऽद्य न कञ्चिद् गणयन् मृधे ।। ४ ।।

अश्वत्थामाने कहा—दुर्बुद्धि! नराधम! मेरे मामा सम्पूर्ण जगत्‌के श्रेष्ठ धनुर्धर एवं शूरवीर हैं। वे अर्जुनके सच्चे गुणोंका बखान कर रहे थे, तो भी तू द्वेषवश अपनी शूरताकी डींग हाँकता हुआ और घमण्डमें आकर आज युद्धमें किसीको कुछ न समझता हुआ जो इन्हें फटकार रहा है, उसका क्या कारण है? ।। ३-४ ।।

क्व ते वीर्यं क्व चास्त्राणि यत्त्वां निर्जित्य संयुगे ।
गाण्डीवधन्वा हतवान् प्रेक्षतस्ते जयद्रथम् ।। ५ ।।

जब युद्धस्थलमें गाण्डीवधारी अर्जुनने तुझे परास्त करके तेरे देखते-देखते जयद्रथको मार डाला था, उस समय तेरा पराक्रम कहाँ था? तेरे वे अस्त्र-शस्त्र कहाँ चले गये थे? ।। ५ ।।

येन साक्षान्महादेवो योधितः समरे पुरा ।
तमिच्छसि वृथा जेतुं सूताधम मनोरथैः ।। ६ ।।

सूताधम! जिन्होंने समराङ्गणमें पहले साक्षात् महादेवजीके साथ युद्ध किया है, उन्हें केवल मनोरथोंद्वारा जीतनेकी तू व्यर्थ इच्छा प्रकट कर रहा है ।। ६ ।।

यं हि कृष्णेन सहितं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
जेतुं न शक्ताः सहिताः सेन्द्रा अपि सुरासुराः ।। ७ ।।
लोकैकवीरमजितमर्जुनं सूत संयुगे ।
किं पुनस्त्वं सुदुर्बुद्धे सहैभिर्वसुधाधिपैः ।। ८ ।।

दुर्बुद्धि! सूत! जो सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं तथा श्रीकृष्णके साथ रहनेपर जिन्हें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी जीतनेमें समर्थ नहीं हैं, उन्हीं लोकके एकमात्र अपराजित वीर अर्जुनको जीतनेके लिये इन राजाओंसहित तेरी क्या शक्ति है? ।। ७-८ ।।

कर्ण पश्य सुदुर्बुद्धे तिष्ठेदानीं नराधम ।
एष तेऽद्य शिरः कायादुद्धरामि सुदुर्मते ।। ९ ।।

दुर्बुद्धि नराधम! कर्ण! तू देख और खड़ा रह। दुर्मते! मैं अभी तेरा सिर धड़से उतार लेता हूँ ।। ९ ।।

शल्य ने जब कर्ण को फटकारा

Karn Parv Chapter 43

शल्य उवाच

विरम विरम कर्ण कत्थना-
दतिरभसोऽप्यतिवाचमुक्तवान् ।
क्व च हि नरवरो धनंजयः
क्व पुनरहो पुरुषाधमो भवान् ।। ३३ ।।

शल्यने कहा—कर्ण! बस, अब बढ़-बढ़कर बातें बनाना बंद करो, बंद करो। तुम अधिक जोशमें आकर अपनी शक्तिसे बहुत बड़ी बात कह गये। भला, कहाँ नरश्रेष्ठ अर्जुन और कहाँ मनुष्योंमें अधम तुम? ।। ३३ ।।

समरगतोऽद्य हतोऽसि सूतज ।। ४० ।।

सूतपुत्र! अब आज तुम्हारे वधके लिये पुनः यह दूसरा उत्तम युद्ध उपस्थित हुआ है। यदि तुम शत्रुके भयसे भाग नहीं गये तो समरांगणमें पहुँचकर अवश्य मारे जाओगे ।। ४० ।।

कुरुषु बहून् विनिहत्य तानरीन् ।। ३७ ।।

कर्ण! याद है वह घटना, जब कि कुरुजांगल-प्रदेशमें घोषयात्राके समय गन्धर्वोंने शत्रु बनकर दुर्योधनका अपहरण कर लिया था, उस समय इन्हीं अर्जुनने सूर्यकिरणोंके समान तेजस्वी उत्तमोत्तम बाणोंद्वारा उन बहुसंख्यक शत्रुओंको मारकर धृतराष्ट्रपुत्रको बन्धनसे मुक्त किया था ।। ३७ ।।

प्रथममपि पलायिते त्वयि
प्रियकलहा धृतराष्ट्रसूनवः ।
स्मरसि ननु यदा प्रमोचिताः
खचरगणानवजित्य पाण्डवैः ।। ३८ ।।

उस युद्धमें तुम सबसे पहले भाग गये थे। उस समय पाण्डवोंने गन्धर्वोंको पराजित करके कलहप्रिय धृतराष्ट्रपुत्रोंको कैदसे छुड़ाया था। क्या ये सब बातें तुम्हें याद हैं? ।। ३८ ।।

समुदितबलवाहनाः पुनः
पुरुषवरेण जिताः स्थ गोग्रहे ।
सगुरुगुरुसुताः सभीष्मकाः
किमु न जितः स तदा त्वयार्जुनः ।। ३९ ।।

विराटनगरमें गोहरणके समय पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने विशाल बल-वाहनसे सम्पन्न तुम सब लोगोंको द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और भीष्मके सहित परास्त कर दिया था। उस समय तुमने अर्जुनको क्यों नहीं जीत लिया? ।। ३९ ।।

श्री कृष्ण द्वारा कर्ण को फटकारना

Karn vadh Parv

एकनवतितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णका कर्णको चेतावनी देना और कर्णका वध

संजय उवाच

तमब्रवीद् वासुदेवो रथस्थो
राधेय दिष्ट्या स्मरसीह धर्मम्।
प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना
निन्दन्ति दैवं कुकृतं न तु स्वम्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! उस समय रथपर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णने कर्णसे कहा—'राधानन्दन! सौभाग्यकी बात है कि अब यहाँ तुम्हें धर्मकी याद आ रही है! प्रायः यह देखनेमें आता है कि नीच मनुष्य विपत्तिमें पड़नेपर दैवकी ही निन्दा करते हैं। अपने किये हुए कुकर्मोंकी नहीं॥ १॥

यद् द्रौपदीमेकवस्त्रां सभाया-
मानाय्य त्वं च सुयोधनश्च।
दुःशासनः शकुनिः सौबलश्च
न ते कर्ण प्रत्यभात्तत्र धर्मः॥ २॥

'कर्ण! जब तुमने तथा दुर्योधन, दुःशासन और सुबलपुत्र शकुनिने एक वस्त्र धारण करनेवाली रजस्वला द्रौपदीको सभामें बुलवाया था, उस समय तुम्हारे मनमें धर्मका विचार नहीं उठा था?॥ २॥

यदा सभायां राजानमनक्षज्ञं युधिष्ठिरम्।
अजैषीच्छकुनिर्ज्ञानात् क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ३॥

'जब कौरवसभामें जूएके खेलका ज्ञान न रखनेवाले राजा युधिष्ठिरको शकुनिने जान-बूझकर छलपूर्वक हराया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था?॥ ३॥

वनवासे व्यतीते च कर्ण वर्षे त्रयोदशे।
न प्रयच्छसि यद् राज्यं क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ४॥

'कर्ण! वनवासका तेरहवाँ वर्ष बीत जानेपर भी जब तुमने पाण्डवोंका राज्य उन्हें वापस नहीं दिया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था?॥ ४॥

यद् भीमसेनं सर्पैश्च विषयुक्तैश्च भोजनैः।
आचरत् त्वन्मते राजा क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ५॥

'जब राजा दुर्योधनने तुम्हारी ही सलाह लेकर भीमसेनको जहर मिलाया हुआ अन्न खिलाया और उन्हें सर्पोंसे डँसवाया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था?॥

यद् वारणावते पार्थान् सुप्ताञ्जतुगृहे तदा।
आदीपयस्त्वं राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ६॥

'राधानन्दन! उन दिनों वारणावतनगरमें लाक्षाभवनके भीतर सोये हुए कुन्तीकुमारोंको जब तुमने जलानेका प्रयत्न कराया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था?॥ ६॥

यदा रजस्वलां कृष्णां दुःशासनवशे स्थिताम्।
सभायां प्राहसः कर्ण क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ७॥

'कर्ण! भरी सभामें दुःशासनके वशमें पड़ी हुई रजस्वला द्रौपदीको लक्ष्य करके जब तुमने उपहास किया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था?॥ ७॥

यदनार्यैः पुरा कृष्णां क्लिश्यमानामनागसम्।
उपप्रेक्षसि राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ८॥

'राधानन्दन! पहले नीच कौरवोंद्वारा क्लेश पाती हुई निरपराध द्रौपदीको जब तुम निकटसे देख रहे थे, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था?॥ ८॥

विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः।
पतिमन्यं वृणीष्वेति वदंस्त्वं गजगामिनीम्॥ ९॥
उपप्रेक्षसि राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः।

'(याद है न, तुमने द्रौपदीसे कहा था) 'कृष्णे! पाण्डव नष्ट हो गये, सदाके लिये नरकमें पड़ गये। अब तू किसी दूसरे पतिका वरण कर ले।' जब तुम ऐसी बात कहते हुए गजगामिनी द्रौपदीको निकटसे आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था?॥ ९॥

राज्यलुब्धः पुनः कर्ण समाह्वयसि पाण्डवान्।
यदा शकुनिमाश्रित्य क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ १०॥

'कर्ण! फिर राज्यके लोभमें पड़कर तुमने शकुनिकी सलाहके अनुसार जब पाण्डवोंको दुबारा जूएके लिये बुलवाया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था?॥

यदाभिमन्युं बहवो युद्धे जघ्नुर्महारथाः।
परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ११॥

'जब युद्धमें तुम बहुत-से महारथियोंने मिलकर बालक अभिमन्युको चारों ओरसे घेरकर मार डाला था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था?॥ ११॥

यद्येष धर्मस्तत्र न विद्यते हि
किं सर्वथा तालुविशोषणेन।
अद्येह धर्म्याणि विधत्स्व सूत
तथापि जीवन्न विमोक्ष्यसे हि॥ १२॥

'यदि उन अवसरोंपर यह धर्म नहीं था तो आज भी यहाँ सर्वथा धर्मकी दुहाई देकर तालु सुखानेसे क्या लाभ? सूत! अब यहाँ धर्मके कितने ही कार्य क्यों न कर डालो, तथापि जीते-जी तुम्हारा छुटकारा नहीं हो सकता॥ १२॥

[redacted]

भीष्म द्वारा कर्ण को फटकार

GhoshYatra Parv

उक्तं तात यथा पूर्वं गच्छतस्ते तपोवनम् ।। ४ ।।
गमनं मे न रुचितं तव तत्र कृतं च ते ।

'तात! तुम्हारे तपोवन जाते समय जैसा कि मैंने पहले ही कह दिया था, वही आज भी कह रहा हूँ। मुझे तुम्हारा वहाँ जाना अच्छा नहीं लगा और वहाँ जाकर तुमने जो कुछ किया, वह भी पसंद नहीं आया ।। ४½ ।।

ततः प्राप्तं त्वया वीर ग्रहणं शत्रुभिर्बलात् ।। ५ ।।
मोक्षितश्चासि धर्मज्ञैः पाण्डवैर्न च लज्जसे ।

'वीर! शत्रुओंने तुम्हें वहाँ बलपूर्वक बंदी बना लिया और धर्मज्ञ पाण्डवोंने तुम्हें उस संकटसे छुड़ाया है। क्या अब भी तुम्हें लज्जा नहीं आती? ।। ५½ ।।

प्रत्यक्षं तव गान्धारे ससैन्यस्य विशाम्पते ।। ६ ।।
सूतपुत्रोऽपयाद् भीतो गन्धर्वाणां तदा रणात् ।

'गान्धारीनन्दन! सेनासहित तुम्हारे सामने ही सूतपुत्र कर्ण गन्धर्वोंसे भयभीत हो युद्धभूमिसे भाग निकला ।। ६½ ।।

क्रोशतस्तव राजेन्द्र ससैन्यस्य नृपात्मज ।। ७ ।।
दृष्टस्ते विक्रमश्चैव पाण्डवानां महात्मनाम् ।

राजेन्द्र! राजकुमार! जब सेनासहित तुम चीखते-चिल्लाते रहे उस समय महात्मा पाण्डवोंने जो पराक्रम कर दिखाया था वह भी तुमने प्रत्यक्ष देखा है ।। ७½ ।।

कर्णस्य च महाबाहो सूतपुत्रस्य दुर्मतेः ।। ८ ।।
न चापि पादभाक् कर्णः पाण्डवानां नृपोत्तम ।

धनुर्वेदे च शौर्ये च धर्मे वा धर्मवत्सल ।। ९ ।।

महाबाहो! उस समय खोटी बुद्धिवाले सूतपुत्र कर्णका पराक्रम भी तुमसे छिपा नहीं था। नृपश्रेष्ठ! धर्मवत्सल! मेरा तो ऐसा विश्वास है कि धनुर्वेद, शौर्य और धर्माचरणमें कर्ण पाण्डवोंकी अपेक्षा चौथाई योग्यता भी नहीं रखता है ।। ८-९ ।।

तस्मादहं क्षमं मन्ये पाण्डवैस्तैर्महात्मभिः ।
संधिं संधिविदां श्रेष्ठ कुलस्यास्य विवृद्धये ।। १० ।।

'अतः संधिवेत्ताओंमें श्रेष्ठ नरेश! मैं तो इस कुलके अभ्युदयके लिये उन महात्मा पाण्डवोंके साथ संधि कर लेना ही उचित समझता हूँ' ।। १० ।।

एवमुक्तश्च भीष्मेण धार्तराष्ट्रो जनेश्वरः ।
प्रहस्य सहसा राजन् विप्रतस्थे ससौबलः ।। ११ ।।

राजन्! भीष्मके ऐसा कहनेपर राजा दुर्योधन हँस पड़ा और शकुनिके साथ सहसा वहाँसे अन्यत्र चला गया ।। ११ ।।

तं तु प्रस्थितमाज्ञाय कर्णदुःशासनादयः ।
अनुजग्मुर्महेष्वासा धार्तराष्ट्रं महाबलम् ।। १२ ।।

महाबली दुर्योधनको अन्यत्र गया जान कर्ण और दुःशासन आदि महान् धनुर्धरोंने उसका अनुसरण किया ।। १२ ।।

कर्ण ने दान देना कब शुरू किआ वो दानवीर कब बना

Ghoshyatra Parv

सोऽब्रवीत् कौरवांश्चापि पार्श्वस्थान् नृपसत्तमः ।। १४ ।।
कदा तु तं क्रतुवरं राजसूयं महाधनम् ।
निहत्य पाण्डवान् सर्वानाहरिष्यामि कौरवाः ।। १५ ।।

नृपश्रेष्ठ दुर्योधनने अपने पास खड़े हुए कौरवोंको सम्बोधित करके कहा—'कुरुकुलके राजकुमारो! कब ऐसा समय आयगा जब मैं समस्त पाण्डवोंको मारकर प्रचुर धनसे सम्पन्न होनेवाले उस क्रतुश्रेष्ठ राजसूयका अनुष्ठान करूँगा' ।। १४-१५ ।।

तमब्रवीत् तदा कर्णः शृणु मे राजकुञ्जर ।
पादौ न धावये तावद् यावन्न निहतोऽर्जुनः ।। १६ ।।
कीलालजं न खादेयं करिष्ये चासुरव्रतम् ।
नास्तीति नैव वक्ष्यामि याचितो येन केनचित् ।। १७ ।।

उस समय कर्णने दुर्योधनसे कहा—'नृपश्रेष्ठ! मेरी यह प्रतिज्ञा सुन लो—'जबतक अर्जुन मेरे हाथसे मारा नहीं जाता, तबतक मैं दूसरोंसे पैर नहीं धुलवाऊँगा, केवल जलसे उत्पन्न पदार्थ नहीं खाऊँगा और आसुरव्रत (क्रूरता आदि) नहीं धारण करूँगा। किसीके भी कुछ माँगनेपर 'नहीं है', ऐसी बात नहीं कहूँगा' ।। १६-१७ ।।

अथोत्क्रुष्टं महेष्वासैर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।

'इन्द्रदेव! यदि मैं आपको अपने दोनों कुण्डल और कवच दे दूँगा तो मैं तो शत्रुओंका वध्य हो जाऊँगा और संसारमें आपकी हँसी होगी। इसलिये (कर्णने सूर्यकी आज्ञाको याद करके कहा—) शक्र! आप कुछ बदला देकर इच्छानुसार मेरे कुण्डल और उत्तम कवच ले जाइये; अन्यथा मैं इन्हें नहीं दे सकता' ।। १६-१७ ।।

शक्र उवाच

विदितोऽहं रवेः पूर्वमायानेव तवान्तिकम् ।
तेन ते सर्वमाख्यातमेवमेतन्न संशयः ।। १८ ।।

इन्द्र बोले—कर्ण! जब मैं तुम्हारे पास आ रहा था, उसके पहले ही सूर्यदेवको यह बात मालूम हो गयी थी। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने ही तुमसे सारी बातें बता दी हैं ।। १८ ।।

राजन्! तब इन्द्रने शक्तिके विषयमें दो घड़ी-तक मन-ही-मन विचार करके कर्णसे इस प्रकार कहा— ।। २२ ।।

कुण्डले मे प्रयच्छस्व वर्म चैव शरीरजम् ।
गृहाण कर्ण शक्तिं त्वमनेन समयेन च ।। २३ ।।

'कर्ण! तुम मुझे अपने दोनों कुण्डल और सहज कवच दे दो और मेरी यह शक्ति ग्रहण कर लो। इसी शर्तके अनुसार हमलोगोंमें इन वस्तुओंका विनिमय (बदला) हो जाय ।। २३ ।।

अमोघा हन्ति शतशः शत्रून् मम करच्युता ।
पुनश्च पाणिमभ्येति मम दैत्यान् विनिघ्नतः ।। २४ ।।

'सूतनन्दन! दैत्योंका संहार करते समय मेरे हाथसे छूटनेपर यह अमोघ शक्ति सैकड़ों शत्रुओंको मार देती है और पुनः मेरे हाथमें चली आती है' ।। २४ ।।

सेयं तव करप्राप्ता हत्वैकं रिपुमूर्जितम् ।
गर्जन्तं प्रतपन्तं च मामेवैष्यति सूतज ।। २५ ।।

'वही शक्ति तुम्हारे हाथमें जाकर किसी एक तेजस्वी, ओजस्वी, प्रतापी तथा गर्जना करनेवाले शत्रुको मारकर पुनः मेरे ही पास आ जायगी' ।। २५ ।।

कर्ण उवाच

एकमेवाहमिच्छामि रिपुं हन्तुं महाहवे ।
गर्जन्तं प्रतपन्तं च यतो मम भयं भवेत् ।। २६ ।।

कर्ण बोला—देवेन्द्र! मैं महासमरमें अपने एक ही शत्रुको इसके द्वारा मारना चाहता हूँ जो बहुत गर्जना करनेवाला और प्रतापी है, तथा जिससे मुझे सदा भय बना रहता है ।। २६ ।।